ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई २०१५

Date of Printing = 05-07-15
प्रकाशन दिनांक= 05-07-15

वर्ष ४४ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : आषाढ़-श्रावण २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❏ वेदोपदेश 2
- ❏ योग की ओर.... 4
- ❏ भारत को जाट..... 6
- ❏ समाज में बढ़ता पाखण्ड 11
- ❏ ईश्वर की सर्वज्ञता.... 14
- ❏ उपनिषदों का महत्व 18
- ❏ ईश्वरीय ज्ञान अनादि.... 21

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **विष्णुः = व्यापकेश्वरः देवता।** अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः।।

अथ त्रिविधस्य प्रश्नस्य त्रीण्युत्तराण्युपत्रिदश्यन्ते।।

अब तीन प्रकार के प्रश्नों के तीन उत्तरों का उपदेश किया जाता है।

ओ३म् सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष।।४।।

पदार्थः **(सा)** वाक्। **वाग् वै यज्ञः।। श० १।१।४।११।। (विश्वायुः)** पूर्णमायुर्यस्यां सा ग्रहीतव्या **(सा)** शिल्पविद्यासंपादिका **(विश्वकर्मा)** विश्वं संपूर्णं क्रियाकाण्डं सिध्यति यया सा **(सा)** संपूर्णविद्याप्रकाशिका **(विश्वधायाः)** या विश्वं सर्वं जगद्विद्यागुणैः सह दधाति सा। **विश्वोपपदे डुधाञ् धातोरसुन्प्रत्ययः बाहुलकाण्डिच्च (इन्द्रस्य)** परमेश्वरस्य यज्ञस्य वा **(त्वा)** तम्। **अत्र पुरुषव्यत्ययः (भागम्)** भजनीयं शुभगुणभाजनं यज्ञम् **(सोमेन)** शिल्पविद्यया सम्पादितेन रसेनानन्देन वा **(आ)** समन्तात् **(तनच्मि)** संकोचयामि = दृढीकरोमि **(विष्णो)** वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं विश्वं तत्संबुद्धौ परमेश्वर **(हव्यम्)** पूर्वोक्तयज्ञसंबन्धि दातुं ग्रहीतुं योग्यं द्रव्यं विज्ञानं वा **(रक्ष)** पालय।। **अयं मंत्रः श० १।७।१।१७-२१ व्याख्यातः।।**

प्रमाणार्थ **(वाक्)** शत' (१ । १ । ४ । ११) में 'वाक्' का अर्थ यज्ञ किया है। **(विश्वधायाः)** विश्व शब्द के उपपद रहते 'डुधाञ्' धातु से असुन् प्रत्यय और वह बहुल करके णित् है। **(त्वा)** तम्। यहां पुरुष-व्यत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ७ ।१ । १७-२१) में की है।

सपदार्थान्वयः **हे विष्णो! = व्यापकेश्वर!** वेवेष्टि = व्याप्नोति चराचरं विश्वं त्सम्बुद्धौ, परमेश्वर! **भवता या वाग् धार्यते, सा** वाग् **विश्वायुः** पूर्णमायुर्यस्यां सा ग्रहीतव्या, **सा** शिल्पविद्यासम्पादिका **विश्वकर्मा** विश्वं=सम्पूर्णं क्रियाकाण्डं सिध्यति यया सा, **सा** सम्पूर्ण-विद्याप्रकाशिका **विश्वधायाः** या विश्वं=सर्वं जगद्विद्यागुणैः सह दधाति सा, **अस्ति।**

तया त्रिविधया गृहीतयैवाहं यमिन्द्रस्य परमेश्वरस्य यज्ञस्य वा **भागं=यज्ञं** भजनीयं शुभगुणभाजनं यज्ञं **सोमेन** शिल्पविद्यया सम्पादितेन रसेनाऽऽनन्देन वा **आतनच्मि** समन्तात् संकोचयामि=दृढीकरोमि।

(त्वा)=तं हव्यं=यज्ञं पूर्वोक्तयज्ञसम्बन्धि दातुं ग्रहीतुं योग्यं द्रव्यं विज्ञनं वा **त्वं सततं रक्ष** पालय।।१।४।।

भाषार्थ : **हे (विष्णो)!** चराचर जगत् में व्यापक ईश्वर! आप जिस वाणी को धारण करते हैं **(सा)** वह वाणी **(विश्वायुः)** पूर्ण आयु को देने वाली होने से ग्राह्य है **(सा)** वह शिल्पविद्यायुक्त होने से **(विश्वकर्मा)** सब कर्मकाण्ड को सिद्ध करने वाली है और **(सा)** वह सब विद्याओं की प्रकाशक होने से **(विश्वधायाः)** सब जगत् का विद्यादि गुणों से धारण-पोषण करने वाली है।

उस तीन प्रकार की वाणी को ग्रहण करने से ही मैं जिस **(इन्द्रस्य)** परमेश्वर वा यज्ञ के **(भागं)** सेवनीय

एवं शुभ गुणों के स्थान यज्ञ को **(सोमेन)** शिल्पविद्या से सिद्ध किये रस वा आनन्द से **(आतनच्मि)** सब ओर से अपने हृदय में दृढ़ करता हूं।

(त्वा) उस **(हव्यं)** यज्ञ एवं पूर्वाक्त यज्ञ-संबंधी देने वा ग्रहण करने योग्य द्रव्य अथवा विज्ञान की आप **(रक्ष)** सदा रक्षा कीजिए।

भावार्थः त्रिविधा वाग् भवति-या ब्रह्मचर्याश्रमे पूर्णविद्यापठनाय पूर्णायुःकरणाय च सेव्यते सा प्रथमा,

या गृहाश्रमेऽनेकक्रियायोद्योगसुखप्रापकफला विस्तीर्य्यते सा द्वितीया,

या च सर्वमनुष्यैः सर्वमनुष्येभ्यः शरीरात्मसुख वर्धनायेश्वरादि पदार्थ विज्ञानप्रकाशिका वानप्रस्थसंन्यासश्रमे खलूपदिश्यते सा तृतीया, न चैनया विना कस्यापि सर्व सुखं भवितुमर्हति।

भावार्थः तीन प्रकार की वाणी होती है - प्रथम वह जो ब्रह्मचर्याश्रम में पूर्ण विद्या पढ़ने एवं पूर्ण आयु प्राप्त करने के लिए सेवन की जाती है,

दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रियाओं से उद्योग के सुखदायक फलों वाली विस्तृत की जाती है और- तीसरी वह जो सब मनुष्यों के द्वारा सब मनुष्यों के लिए शरीर और आत्मा की सुखवृद्धि के लिए ईश्वरादि पदार्थो के विज्ञान को प्रकाशित करने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में उपदेश की जाती है, और इसके बिना किसी को भी सब सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

सुभाषित रत्नमाला

(१) **यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,**
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युत्तमः कीदृशः॥

भावार्थ जब तक शरीर स्वस्थ और रोगरहित है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति विद्यमान है, जब तक आयु क्षीण नहीं हुई है, तब तक बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह आत्मकल्याण के लिए महान् पुरुषार्थ करता रहे। अन्यथा घर में आग लग जाने पर कुआं खोदने के समान कुछ भी नहीं कर पाएगा।

(२) **गात्रं संकुचितं गतिरविगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि,**
दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धव जनो भार्या न शुश्रषते।
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥

भावार्थ बुढ़ापे में सारा शरीर सिकुड़ कर झुक जाता है, शरीर में झुरियाँ पड़ गई हैं, शरीर की चाल धीमी और डगमगाने लगी है, दान्तों की पंक्तियाँ टूटकर गिर गई हैं, आँखों की दृष्टि नष्ट हो गई है, कानों से सुनाई नहीं देता है और मुख से लार टपकने लगी है। परिवार के भाई-बन्धु बूढ़े की बातों का आदर नहीं करते, पत्नी भी सेवा नहीं करती, जो भी हो मानव का बुढ़ापा दुःखों से भरा हुआ है और इस अवस्था में अपने पाले हुए पुत्र भी शत्रु के तुल्य व्यवहार करते हैं।

(३) **आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवनम्,**
व्यापारैर्बहुकार्यभार बहुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमादरामुन्मुत्तभूतं जगत्॥

भावार्थ मनुष्य की आयु सूर्य के उदय और अस्त होने से प्रतिदिन घट रही है, इसी प्रकार दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष क्रमशः बीत रहे हैं। सांसारिक कार्यो में संलिप्त मनुष्य का जीवन बीत रहा है। मनुष्य को उसका ज्ञान भी नहीं होता है और बुढ़ापे में तरह-तरह के रोग, कष्टों तथा मृत्यु आदि को देखते हुए भी भय उत्पन्न नहीं होता। ऐसा आभास हो रहा है कि प्राणिजगत् मोह (अज्ञानरूपी) मदिरा पीकर मतवाला हो गया है अर्थात् सब कुछ देखते हुए भी जीवन के परम लक्ष्य की तरफ असावधान होने से पुरुषार्थहीन हो गया है।

(भर्तृहरि-वैराग्य-शतक से उद्धृत)

योग की ओर दुनिया के दो कदम

(धर्मपाल आर्य)

21 जून को पूरी दुनिया ने योगदिवस के रूप में मनाया। मुझे यह लिखने में संकोच नहीं कि विश्व में जितने भी दिन अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के रूप मनाये जाते हैं, उन सब (दिवसों) पर यह अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस भारी रहा है। योग हमारी सनातन और शाश्वत जीवनशैली है, उस जीवनशैली को अपनाने के लिए यदि दुनिया अपने कदम उत्साह के साथ बढ़ा रही है, तो यह मेरे जैसे करोड़ों-करोड़ों आर्यों के लिए गौरव की बात है। परन्तु मुझे बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि जब सारा विश्व 21 जून को विश्व योगदिवस के रूप में मनाने के लिए उत्साह के साथ तैयारियों में जुटा था, उस समय भी कुछ महानुभाव इस पावन सनातन जीवन-शैली तथा हमारी सांस्कृतिक विरासत (योग) को नकारात्मक राजनीति के विवाद के चक्रव्यूह में फंसाने का प्रयास कर रहे थे। सारी दुनियाँ जब नीरोग जीवन के, सफल जीवन के, पवित्र जीवन के पवित्र सिद्धान्त (योग) को अपनाने के लिए लालायति हो रही थी, तब हमारे ही देश में सूर्य नमस्कार और प्रणव (ओ३म्) के जप को बहस का विषय बनाया जा रहा था। उन महानुभावों के उपरोक्त व्यवहार से वेद के सङ्गच्छध्वं संवदध्वं अर्थात् सत्य और न्याय के विषय में मिलकर चलो और मिलकर बोलो" की परम्परा को 'जबर्दस्त ठेस पहुँची है। योग को लेकर जिस तरह अनावश्यक बवन्डर खड़ा करने का प्रयास हमारे देश में किया गया, ऐसा किसी अन्य देश में हुआ हो मुझे स्मरण नहीं। जो योग विद्या सारी दुनियां को जोड़ने का कार्य कर रही है; जो योगविद्या सारी दुनिया के लिए वरदान सिद्ध हो रही है, जो योग विद्या बीमारियों का अचूक उपचार सिद्ध हो रही है, उसे विवाद का विषय बनाया जाये फिर वह भी ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, योगियों के अपने देश में तो इससे बड़ा हमारा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? भारत सारी दुनिया का आध्यात्मिक गुरू था और भविष्य में विश्वगुरु बनने की भावनाओं को इस विश्व-योग-दिवस से बल मिला है। मैंने अपने लेख को जब उपरोक्त शीर्षक (दुनियां के दो कदम योग की ओर) दिया, तो मेरे एक मित्र मुझसे पूछने लगे कि धर्मपाल जी! आप द्वारा लिखे जाने वाले उपरोक्त लेख के शीर्षक का क्या अभिप्राय है? मैंने उन्हें उत्तर देते हुए कहा कि "बन्धुवर योग के आठ अङ्ग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) ही आठ कदम हैं और दुनियां ने योग के उपरोक्त आठ कदमों (अङ्गों) में से केवल दो कदम (आसन, प्राणायाम) ही योग की ओर बढ़ाये हैं। सम्पूर्ण मानव समाज ने जिस योग को अपनाया है, वह केवल आसन-प्राणायाम का विस्तृत रूप है। आसन-प्राणायाम की व्याख्या ही पूरी दुनिया के लिए रोगनिवारण का अचूक मन्त्र बना हुआ है। पाकिस्तान के योगशिक्षक शमसाद हैदर की यहाँ चर्चा करना अप्रासंङ्गिक नहीं होगा, जिन्होंने लगभग दस हजार लोगों को यौगिक क्रियाओं से लाभान्वित किया है। क्या जापान, क्या श्रीलंका, क्या अमेरिका, क्या बर्लिन, क्या पेरिस, क्या हांगकांग और क्या पोर्ट लुई सबमें भारतीय योग की धूम। मैंने अपने जीवन में योग के प्रति विश्वस्तर पर इतना आकर्षण कभी नहीं देखा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव श्री बान की मून की टिप्पणी सटीक ही थी कि योग भेदभाव नहीं करता। इस छोटे से वाक्य ने निस्सन्देह भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा भारतीय योगविद्या की व्यापकता पर सत्यता की मुहर लगा दी है। राजनीति में मतभेद होना स्वाभाविक है लेकिन किसी ऐसे विषय को जिससे भारत की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगते हों, उसे क्षुद्र राजनीतिक मतभेदों की बलि चढ़ा देना अवश्य ही पीड़ा देने वाला व्यवहार है। दुनिया के लगभग 175 देशों ने योग की महत्ता को जिस शालीनता और उत्साह के साथ न केवल स्वीकार किया, अपितु तदनुरुप अपनी शैली को बनाने का

सत्प्रयास किया उनका यह सत्प्रयास हमारे उन राजनीतिज्ञों तथा तथाकथित धर्म के ठेकेदारों के लिए अनुकरणीय है जिन्हें कभी योग से तो कभी योगी से बू आती है। स्वामी रामदेव तथा श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार समेत वे सभी योगगुरु, योगशिक्षक और योग प्रचारक धन्यवाद, कृतज्ञता और बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने दुनिया को योग के पथ पर दो कदम ही सही लेकिन चलाने का एक ऐतिहासिक और अविस्मरणीय सूत्रपात तो किया ही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में योग को विश्व-योग-दिवस के रूप में मान्यता दिलवाना भारत की कूटनीतिक सफलता की दिशा में एक सफल कदम है। भारतवर्ष ने दुनियां को संस्कारों की, चरित्र की, मानवता की, आध्यात्मिकता की, भक्ति की और विश्व-बन्धुत्व की अमिट सौगात दी है। मनु ने यूँ ही नहीं लिख दिया-

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं! शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।''

अर्थात् सारी दुनियां के लोग अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए और अपने चरित्र निर्माण के लिए भारत की पावन धरती पर आश्रय लेते थे। चरित्र का, आध्यात्मिकता का, मानवता का, संस्कारों का और भक्तिा का स्रोत कहूँ या स्तम्भ कहूँ, तो वह केवल और केवल योग ही है। इसके बाद भी यदि योगविद्या से किसी को साम्प्रदायिकता की बू आती है, तो यह दोष योग का नहीं, अपितु उस व्यक्ति की विकृत मानसिकता का दोष है। कुछ राजनीतिक दलों, कुछ राजनीतिज्ञों तथा कुछ धर्म के ठेकेदारों की एक आदत है, उन्हें हर उस सिद्धान्त से, हर उस जीवन पद्धति से सम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध आती है, जो मानव-समाज के लिए वरदान है। मुझे प्रबुद्ध पाठकों को यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है कि योग के प्रति विश्व समुदाय के अभूतपूर्व अविस्मरणीय तथा इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लेखनीय उत्साह के सामने कुछ लोगों की घिनौनी तथा नकारात्मक सोच एकदम बौनी साबित हुई। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे राजनीतिक दलों को, ऐसे राजनीतिज्ञों और धर्म के ठेकेदारों को सद्बुद्धि मिले, ताकि उनकी नकारात्मक मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन हो। योग की यशपताका दुनियां में बिना किसी रुकावट के फहरा सके। योग किसे कहते हैं? यदि इसके उत्तर पर निष्पक्षता से चिन्तन, मनन और विचार किया जाए, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस विद्या के प्रति नकारात्मक मानसिकता में आशातीत परिवर्तन होगा। योग का सामान्य अर्थ है- जोड़ना अर्थात् जो विद्या मनुष्य को मानवता से, सत्य से, दयालुता से, उदारता से, सहनशीलता से, संयम से, भक्ति से, और आरोग्य से जोड़ती है, वही तो योग कहलाता है। ऐसी विद्या को साम्प्रदायिकता की दल-दल में घसीटना क्या मानव समाज के साथ विश्वासघात नहीं है? गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं- "योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात् हे पार्थ! कर्मकौशल ही योग कहलाता है। योगदर्शन में योग की व्याख्या कुछ इस प्रकार दी है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को नियन्त्रित करना ही योग कहलाता है। ऐसी पावन विरासत का पूर्वागृह से ग्रस्त होकर जो लोग विरोध कर रहे हैं, वे मानवता के घोर शत्रु हैं। योग भारत की अमूलय धरोहर है। यदि दो कदम दुनियां ने इस तरफ बढ़ाए हैं, तो अवश्य ही दुनियां को कहीं न कहीं इस बात का अनुभव हुआ है कि असाध्य रोगों का उपचार योग द्वारा किया जा सकता है। अभी तो केवल दो कदम दुनियां के योगपथ की ओर बढ़े हैं, इतना उत्साह योग के प्रति उमड़ा है और यदि दुनिया ने योगपथ पर आठ कदम बढ़ा दिये, तो दुनियां के उत्साह के लिए उपमा में सागर की उपमा बहुत छोटी पड़ जायेगी। अन्त में इस आशा के साथ अपनी बात समाप्त करूँगा- "भगवान दुनियाँ में योगपथ पर चलने के लिए और बाकी छह कदमों को रखने की दृढ़ता का और इच्छाशक्ति का शक्ति का संचार हो, ताकि प्राणिमात्र में सद्भावना का संचार हो, आरोग्य की प्राप्ति हो, विश्वबन्धुत्व की स्थापना हो और समृद्धि की वृद्धि हो।

❑❑

"भारत को जाट की देन" की समीक्षा

(राजेशार्य आट्टा, 1166, कच्चा किला, साढौरा, यमुनानगर, हरि.133204)

प्रिय पाठकवृन्द! श्री महीपाल आर्य जी, संस्कृत प्राध्यापक, मतलौडा (हिसार) ने कुछ समय पूर्व 'प्राचीन भारत जट/जाट की देन' पुस्तक मेरे पास भेजी थी, ताकि मैं उनकी पीड़ा को स्वर दे सकूँ। लगभग 550 पृष्ठों की इस पुस्तक में मुझे लेखक का अलगाववादी स्वर ही सुनाई दिया है। जिनके पूर्वजों ने हजारों पीढ़ियों से इस भारत देश को मातृभूमि मानकर इसकी समृद्धि व रक्षा में अपना खून-पसीना बहाया हो, उन्हीं का वंशज आज अपने विदेशी होने की घोषणा करे; वेद, संस्कृत व आर्यों से अलगाव दिखाए; इनके प्रति घृणा प्रकट करे; गाय को ढांडी कहे; बाबर और औरंगजेब जैसे क्रूर शासकों की प्रशंसा करे; वर्तमान के कुछ लोगों के अवगुणों को वर्तमान व अतीत के सब लोगों पर थोपे, आर्यों व ऋषियों को मांसाहारी, घुमक्कड़ व मूर्ख कहकर उपहास उड़ाये; वर्तमान व अतीत के अन्य सभी (ब्राह्मण, राजपूत आदि) वर्गों के प्रति घृणा व्यक्त करे, तो लगता है कि यह व्यक्ति अलगाववादियों के षड्यंत्र का शिकार हो गया है। देखिये-

1. हाँ, हम पूर्वी ईरानी हैं...। हाँ, हम ही ने सिन्धू सभ्यता से भी पूर्व बिलोचिस्तान से भारत को कृषि आधार दिया।.... (पृ. 324)

2. हमारा घोड़े गधे खाने वाले आर्यों से कोई ताल्लुक नहीं है। (पृ. 352)

3. हमारा कौरव-पांडव से कोई ताल्लुक नहीं। (पृ. 192)

4. जाटभाषा का ही संस्कृत से कोई ताल्लुक नहीं। (पृ. 276)

5. जाट एक भैंस-पालक जाति है और भैस का ही दूध पीती है (पृ. 389)

6. हमारा राजपूत से किसी किस्म का कल्चरल ताल्लुक नहीं। (पृ. 371)

7. हमारे गोत किसी ऋषि, राजा या गुरु पर नहीं हैं। (पृ. 418)

8. हजरत मूसा ने जो कानून दिये, उनका बहुत बड़ा भाग जाटों मे है। (पृ. 92)

9. ऋग्वेद ने जाट के सभी गोतों की असुर कहकर निन्दा की है। (पृ. 238)

10. बाबर की आत्मकथा की तुलना संसार में किसी आत्मकथा से नहीं की जा सकती। (पृ. 173)

11. औरंगजेब की गलती बस इतनी है कि वो अपनी परदादा अकबर वाली योग्यता नहीं रखता था।... वो एक इमानदार शासक था। (पृ. 425)

वैदिक मान्यता के अनुसार आत्मा हर समय किसी न किसी शरीर में और किसी न किसी देश में रहता ही है। अतः यदि लेखक पूर्वजन्म की किसी स्मृति के कारण स्वयं को ईरानी मानता हो और 60-65 वर्ष भारत में बिताकर भी उसे अपने देश की याद आ रही हो, तो लेखक वहाँ खुशी से जा सकता है। पर ध्यान रहे, पिछला शरीर छूटते ही पिछले सभी सम्बन्ध भी छूट जाते हैं। किस भाट के पत्रे में लिखा है कि लेखक का अमुक नाम का पूर्वज ईरान से भारत आया? फिर मुझे या मेरे पूर्वजों को विदेशी कहने का लेखक (श्री विजय चन्द्र दहिया) को क्या अधिकार है? भोले लोगों की जातीय भावना को उभारकर उन्हें राष्ट्र के विशाल समाज (आर्य), समृद्ध भाषा (संस्कृत), प्राचीन साहित्य (वेद), इतिहास (रामायण, महाभारत आदि), संस्कार व परम्परा (गोपालन आदि) से घृणा करना सिखाना क्या यही है जाटों की भारत को देन? क्या लेखक की दृष्टि में यही है जाट की कल्चर? नमूने के तौर पर देखिये-

"अगर उस (जाटणी) का खुद का लड़का भी घी दूध मलाई को हाथ लगा दे तो उसका बक्कल उतारना। खसम (पति) की तो साले की औकात ही क्या है...

. वो तो लफंडर है.... शादी में सारे कल्चरल काम नारी करती है.... जाट तो लाडू पाड़ता है, हाथ पर हाथ मारकर ऊपर थोबड़ा करके हँसता है फिर दारू की घूंट मारकर दुनियां पलटने की सोचता है।" (पृ. 140 व 25)

"जैटूं में शादी कोई पवित्र काम नहीं था बल्कि नारी को एक ऐसा नौकर चाहिये था, जो उसके खेत में सिंचाई कर सके.... पशु चराना.... फसल पीटकर. ...। इसलिये नारी ने उसे सारा साल रोटी देने की तनख्वाह में नौकर बना लिया। उसका (पति का) घर में स्थान नहीं था।" (पृ. 48)

क्या अशुद्ध भाषा (सभ्यता को सम्यता, अथर्ववेद को अर्थववेद, पं. हरिशरण को पं. हरियाणा) लिखना और संस्कृत के जाट विद्वानों से घृणा करना भी जाट की देन है?

"संस्कृत पढ़ा-लिखा जाट जो गिन्ती में ही 3-4 हैं। वे समानार्थी शब्दों का सहारा लेकर स्वामी दयानन्द के भाष्य की आड़ में एक तरफ जाट को खुश करना चाहते हैं, तो दूसरी तरफ पंडे बने रहना चाहते हैं.... इन 3-4 संस्कृतज्ञ जाटों को छोड़कर कोई भी जाट वैदिक मानव नहीं है।" (पृ. 298)

"एक आर्यसमाजी जाट एक ब्राह्मण से भी ज्यादा कट्टरवादी है, अन्धविश्वासी है।.... फिर भी कोई ब्राह्मण इनमें शादी के सम्बंध नहीं रखता।" (पृ. 486)

क्या अपनी एक ही पुस्तक में परस्पर विरोधी बातें लिखना भी जाट की देन है? केवल एक झलक देखिये-

1. "भारत में 'माँ' शब्द आम कल्चरल शब्द है।" (पृ. 110)

"जाट को छोड़कर कहीं भी 'मां' नहीं बोला जाता।" (पृ. 110)

2. "ऋग्वेद उन लोगों की किताब है जो 1500 बी.सी के आसपास या बाद में भारत आये।" (पृ. 212)

"ऋग्वेद केवल घोड़े वाले (आर्यों) का ही ग्रन्थ नहीं है बल्कि ये सभी को प्रतिनिधित्व दे रहा है।" (पृ. 272)

3. "हाँ, हम (जाट) ही ने सिन्धु सभ्यता से भी पूर्व.... भारत को कृषि आधार दिया।" (पृ. 324)

"मैं खुद मानता हूँ कि कृषि की टैक्निक हमें मन्नु द्रविड़ ने दी। (पृ. 324)

4. "ये (घोड़े वाले) आर्य नहीं ऊत थे। आर्य शब्द तो जाट, चमार, जुलाहे, खाती, बणिया, जोगी से उड़ाया गया है।" (पृ. 209)

"यानि जाट अर्य थे, कुम्हार, लुहार, चर्मकार, नाई अर्य थे, बणिया अर्य थे जो अर्य नहीं थे वे (घोड़े वाले) आर्य थे।" (पृ. 518)

5. "ऋग्वेद में एक बार भी आर्य शब्द श्रेष्ठ रूप में नहीं आया है।" (पृ. 514)

"आर्य शब्द कूलीन व सम्मानीय के लिये 42 मंत्रों में आया है।" (पृ. 514)

6. "इस विचार का मतलब है कि जाट ईश्वर को नहीं मानता....।" (पृ. 172)

"जाट, मूला जाट, सिख जाट निर्गुण परमात्मा को मानते हैं।" (पृ. 503)

प्रबुद्ध पाठक! देखिये, लेखक ने अपने कथन की समीक्षा स्वयं कर दी। अपनी अज्ञानता, दूसरों पर लादकर लिख दिया कि जाट 1910 ई. तक अनपढ़ थे और 1960 ई. में भी 20 तक ही गिनती जानते थे। इस कथन की सच्चाई को पाठक अच्छी तरह जानते हैं, पर मैं लेखक से पूछना चाहता हूँ कि क्या अनपढ़ता भी जाट की देन है? फिर लेखक किस आधार पर लिखता है कि ऋग्वेद में अनेक शब्द जाट के हैं? 'यातुधाना' शब्द में जबरदस्ती 'जाट' शब्द ढूंढने और 'जातवेद' को जाटवेद कहकर खुश होने से इतिहास नहीं लिखा जाता। लेखक की नादानी पर तरस आता है। अनन्त शब्दावली वाली संस्कृत भाषा के विषय में कोई यह कहे कि इसने मेरे शब्द लिये हैं, तो ऐसा लगता है जैसे कोई भिखारी किसी दानी राजा पर यह आरोप लगाए कि राजा ने मेरे पाँच रुपये चुराये हैं। पर सुनने वाले सब असलियत जानते हैं। सत्य का तो लेखक को भी पता है, पर हठ, दुराग्रह, स्वार्थ आदि के कारण सत्य से भाग रहा है। देखिये-

पृ. 260 पर लिखा है- "वैदिकधर्म की मनमानी के विरुद्ध बुद्ध व जैन धर्म उठे।" इसका अर्थ यही हुआ कि वैदिकधर्म प्राचीन है, जैन नहीं।

पृ. 277- "1000 ए.डी. से पहले के मध्य पूर्व भारत के साहित्य में जाट शब्द व उसकी कल्चर है ही नहीं।"

पृ. 317- "घटना साफ कहती है शक्य/सिथियन व ब्राह्मणों को छोड़कर 800-500 बी.सी. में जाति व्यवस्था नहीं थी।

पृ. 390-91- "ऋग्वेद 10-27-17.. पर सायण द्वारा अनुवाद में भेड़, बैल पकाने की बात कही है।... स्वामी दयानन्द ने पर्यायवाची शब्दों का इस्तेमाल कर आध्यात्मिक अर्थ निकाले हैं। ये मेरा विषय नहीं है कि कौन ठीक है।"

इसका अर्थ हुआ कि मूल में मांसाहार नहीं है, यह मांसाहारी भाष्यकारों की धूर्तता है। जब प्रसंग के अनुसार आध्यात्मिक अर्थ बनता है, तो लेखक उससे भाग क्यों रहा है? हिम्मत है तो उसे चुनौती दे।

पृ. 212- "प्राकृत में जरित व जुर्त शब्द जट्ट बन गये।"

अर्थात् वैदिक संस्कृत में जो जरित है, यदि वही प्राकृत (जिसे लेखक जाट की भाषा मानता है) में जट्ट बना है, तो सिद्ध हो गया कि प्राकृत भाषा और जाट वैदिक से बाद के हैं। लेखक वैसे ही जाट की उत्पत्ति 13000 बी.सी. और वैदिक धर्म की 1500 बी.सी. लिख रहा है।

पृ. 146- "एक लम्बे समय में भाषाई शब्द अपने अर्थ खो देते हैं। केवल शब्द ही नहीं, परिभाषायें भी बदल जाती हैं।"

फिर लेखक ने सुमेरियन भाषा के 214 शब्दों का अंग्रेजी में अर्थ देकर जाट की भाषा में समानता दर्शाने का प्रयास क्यों किया? जबकि उनमें से बहुत से शब्दों की न तो ध्वनि मिलती है, न अर्थ। देखिये-

काल्वी	Dog	कलमुंही	कुतिया
इरनी	Sweet	हिरणी	सुन्दर औरत
गामरू	All	गाभरू	सभी नौजवान
इमुश	Snake	मुशा	चुहा

(दोनों बिल में रहते हैं और सांप चूहे खाता है)

जुध	Bull	गधा

(समेर में गधे से खेती होती... वैसे ये शब्द गुड भी हो सकता है।)

हम भी तो यही कहते हैं कि लेखक बार-बार जाटों को असुर लिखने का ऋग्वेद पर आरोप लगाकर पाठकों को भ्रमित कर रहा है। क्योंकि प्रथम तो वेदों में सृष्टि का इतिहास है, जाट आदि मानवों का नहीं। दूसरे इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि आज जाट जिस आहरै, आहरी शब्द का प्रयोग करता है, वैदिक-काल में भी करता था। यदि करता भी हो और इसी कारण वेद ने उन्हें आहरै - आहुरै - आसुरे - असुर कहा हो, तो भी वेद में असुर का अर्थ केवल राक्षस नहीं है। वहाँ तो परमात्मा के लिए भी असुर (प्राणों को देने वाला या प्राणों में रमा हुआ) शब्द आया है। हाँ, लौकिक साहित्य में असुर का अर्थ राक्षस है, पर यह भी सत्य है कि जिनके लिये असुर शब्द है, वे जाट नहीं थे, क्योंकि असुरों का राजा रावण ब्राह्मण था। इसका अर्थ है असुर भी बाद में आर्य की तरह गुणवाचक शब्द बन गया। उपनिषदों में इन्द्रियों के भोगों में लगे व्यक्तियों को असुर कहा है; गीता में भी अभिमानी, अज्ञानी, कठोर व क्रोधी व्यक्तियों को असुर कहा है। ये कोई भी हो सकते हैं, समुदाय विशेष नहीं। संस्कृत से अनभिज्ञ व संस्कृत से घृणा करने वाला लेखक वेदमंत्र की व्याख्या करे, तो अनर्थ के अतिक्ति और क्या हो सकता है!

भोले लोगों को भ्रमित करने के लिए लेखक ने विद्वानों के प्रमाण भी दिये हैं, पर अभिप्राय अपना ही निकाला है। देखिये-

ऋग्वेद के 25 मंत्रों में जाट शब्द ढूँढने के प्रयास में लिखा है- अरिगुर्त - काम क्रोध लोभ आदि शत्रु (1. 186.3) (ये कथन बनावटी है अरिगुर्त का मतलब है कि दुश्मन गुर्त) यानि दुश्मन जाट। (पृ. 212)

जातवेद - सर्वज्ञ प्रभु (3.8.1) (जाट+वेद)

एक तरफ तो लेखक वेद और वेद को मानने वाले आर्यों से हद तक घृणा करता है, दूसरी तरफ उन्हीं वेदों में 'जाट' शब्द को ऐसे ढूँढता है, मानो वेद जाटों का ही इतिहास हो। यह तो हम भी मानते हैं कि मानव आदिकाल से ही कृषि, पशुपालन आदि कर रहा है, पर उस काल में जाट आदि तथाकथित जातियाँ नहीं बनी थीं। यही कारण है कि रामायण में यह शब्द नहीं मिलता। कुछ विद्वानों के अनुसार महाभारत में जाटोंके गोत्र मिलते हैं और यह भी सत्य है कि वर्तमान में जाटों के गोत्र ब्राह्मण, राजपूत, खत्री, हरिजन आदि में भी मिलते हैं, जो इस बात का संकेत करते हैं कि कुछ सौ हजार वर्ष पूर्व इन सभी के पूर्वज एक वर्ण के थे। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से थे अथवा इनसे भी पूर्व आर्य ही थे। लेखक ने संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों को भ्रमित करने के लिए लिख दिया-

''आर्य का मूल है- ऋ अरति का अर्थ है घुमक्कड़'' (आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश) पृ. 515

यह बिलकुल झूठ है। प्रथम तो इस कोश में लौकिक शब्दों का अर्थ लिखा है, वैदिक का नहीं। दूसरे कुछ शब्द वैदिक लौकिक में समान होते हैं, अतः उनका लौकिक अर्थ वैदिक में भी कहीं कहीं लिया जा सकता है। वहाँ लिखा है-

आर्य (वि.-विशेषण) (ऋ+ण्यत्) आर्यन या अर्य (श्रेष्ठ, आदरणीय) के योग्य, 2. योग्य, आदरणीय, सम्माननीय, कुलीन, उच्चपदस्थ, 3. अत्युत्कृष्ट, मनोहर, श्रेष्ठ। आर्य मूल का यही अर्थ है, घुमक्कड़ नहीं लिखा। इसी तरह लेखक ने ऋत्विज के अर्थ की कल्पना की है-

''ऋत्विज का चालू अर्थ ब्राह्मण बना दिया, परन्तु इसका अर्थ है अनाज की रोटी माँगने वाले।'' (पृ. 272)

भूखे आदमी की तरह लेखक को हर चीज़ रोटी जैसी दिखती है। ऋग्वेद में आये 'उषा' शब्द में भी रोटी दिखाई दी। लिखा है- "Rut देवी या रोटी देवी को बिगाड़कर जोरोस्ट्र ने नया शब्द 'आशा' रख दिया और उसी को बिगाड़कर ऋग्वेद ने उषा कर दिया।'' (313)

जबकि वेद के विद्वान् बताते हैं कि ऋतु के अनुसार यज्ञ करने वाला या ऋतु-ऋतु में नाना प्रकार के पदार्थों का उत्पादक ऋत्विज कहलाता है। (ऋ. 1.1.1) में यह परमात्मा के लिये भी आया है। उपरोक्त उदाहरणों से पाठक समझ गये होंगे कि लेखक ने जाटों का आर्यों से अलगाव और ईरानी लोगों से समानता सिद्ध करने के लिए कैसी-कैसी कल्पनाएँ की हैं। लेखक स्वयं तो संस्कृत जानता नहीं और ऋग्वेद के ऋषियों की कमियाँ निकालने लगा। पृष्ठ 291 पर लिखा है- "समझ में ना आने के कारण ऋग्वेदिक लोगों ने उलट-सुलट शब्द इरान व भारत में ठोंक दिये।"

यदि जाट की भाषा इतनी समृद्ध थी कि ऋग्वेद भी उससे शब्द लेता, तो उसका प्रभाव भारत की अन्य भाषाओं में क्यों नहीं दिखता और संस्कृत का प्रभाव भारत व विदेशों की बहुत सी भाषाओं में आज भी क्यों दिखता है? लेखक के अनुसार जब जाट आर्यों से लगभग 10000 वर्ष पूर्व अस्तित्व में थे, तो वह वेद पर यह आरोप कैसे लगा सकता है कि उन्होंने जाट को शूद्र-शूद्र कहकर उसका नैतिक पतन करने की कोशिश की (पृ. 409)? लेखक स्वयं वेद के अच्छे-अच्छे शब्दों के भी बुरे-बुरे अर्थ (जो बनते ही नहीं) निकालकर उन्हें जाटों पर थोप रहा है और संस्कृत पढ़कर ब्राह्मण बनने वालों का विरोध कर उन्हें शूद्र के गड्ढे से निकलने नहीं दे रहा। साथ में यह भी आरोप लगा रहा है कि जाट को मनुस्मृति व अर्थशास्त्र पढ़ने के अधिकार से वंचित रखा गया था।

जब लेखक जाट का संस्कृत से कोई ताल्लुक नहीं मानता, तो दूसरों पर दोष कैसा? हम मानते हैं कि मध्यकाल में विद्या का अधिकार संकुचित हुआ, पर आज संस्कृत पढ़ने वाले जाटों की निन्दा कौन कर रहा है और क्यों कर रहा है? वेद पर जाट-विरोधी होने का आरोप कौन लगा रहा है? भारतीय हिन्दू समाज को जाट, ब्राह्मण, राजपूत, गुज्जर, यादव आदि में बाँटकर

कौन ईरान, अफगानिस्तान के मुल्लाओं से अपना लगाव बढ़ा रहा है?

लेखक महोदय, दुर्भाग्य से हिन्दूसमाज जातियों में बँटा-कटा रहा और लुटता-पिटता रहा। आज आर्य समाज जैसे संगठनों के कारण जातिवाद के सामाजिक स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया है, पर राजनीति ने हिन्दुओं को फिर उसी दलदल में धकेल दिया है और शायद आप भी उसमें सहयोगी होने जा रहे हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि विश्व-प्रेम से पहले हम देश-प्रेम की बात करें क्योंकि'

यह कैसी तकरार बढ़ी है, हम दोनों के बीच,
भारत माँ लाचार खड़ी है, हम दोनों के बीच।
खोद रहा है तू क्यों खाई, मेरे भाई आज।
पहले ही दीवार खड़ी है, हम दोनों के बीच।।

महोदय, केवल जाट के नाम से संगठन सीमित दायरा है। सैकड़ों वर्ष पूर्व अपना मजहब बदल चुके विदेशी या स्वदेशी लोग केवल कुछ शब्दों या रिवाजों की समानता के कारण अपने नहीं हो सकते। हमें नहीं भूलना चाहिए कि मजहब ने ही पाकिस्तान बनवाया था और मजहब ने ही खालिस्तान के नाम पर हिन्दुओं का खून बहाया था। आप भले ही जाट संगठन के नाम पर कुम्हार, नाई, चमार आदि को जाट लिखते हो, पर उनके साथ जाटों के वैवाहिक सम्बन्ध नहीं हैं और न सभी जाट उन्हें जाट मानते हैं, फिर विदेशी और विधर्मी तो बहुत दूर हैं।

महोदय, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा को परे फैंक कर आर्य के नाम से जुड़िये यह विशालता को धारण करेगा। देश-विदेश के बौद्ध, जैन, आर्य समाज तथा अन्य, बहुत से हिन्दू भी स्वयं को आर्य मानते हैं और भारत के इतिहास का प्रारम्भ आर्य नाम से ही होता है। आर्यों के अंगों (ब्राह्मण, द्रविड़, जाट, राजपूत आदि) में परस्पर द्वेष फैलाकर आज अंग्रेज हँस रहे होंगे, पर भारतीय जाट इतिहास लेखकों के अतिरिक्त विदेशी इतिहासकार भी जाटों को आर्यों का ही अंग मानते हैं। प्रो. कालिका रंजन कानूनगो ने 'जाटों का इतिहास' में लिखा है-

"जाट निःसन्देह निर्भीक किसान हैं, अपने देश का गौरव हैं, जो हल और तलवार दोनों के प्रयोग में समान रूप से सिद्धहस्त हैं, परिश्रम तथा साहस में वह किसी भी भारतीय जनजाति से कम नहीं हैं। शरीर की बनावट में वे राजपूत तथा खत्री जैसे हैं और वे जाति के उस प्रारूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो भारत के परम्परागत उपनिवेशवादी आर्यों के सम्बन्ध में बताया गया है।" (पृ० 1)

डॉ० ट्रम्प और बीम्स ने शक्तिशाली शब्दों में इन दोनों जातियों (जाट व राजपूत) को उनके शरीर की बनावट तथा भाषा के आधार पर शुद्ध आर्य घोषित किया। यह कहा गया कि उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी की ही एक बोली है, जिसमें सिथियन भाषा की लेशमात्र भी झलक नहीं है।

सर हर्बट रिसले राजपूतों और जाटों को वैदिक आर्यों का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते थे। सर विलियम फाउलर आदि सभी प्रमुख विद्वानों के अनुसार जाट शुद्ध आर्य की शारीरिक बनावट और भाषा की संयुक्त कसौटी पर खरा उतरा है। (पृ. 4)

भरतपुर के राजा अपने को उसी मूलजाति से सम्बद्ध मानते हैं, जो यादवों की थी। (पृ. 8)

जाटों के हैहय यादवों की एक शाखा जट्टाओं अथवा सुजाटों से पहचान करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। (पृ. 9)

जाटों का स्थानान्तरण भारतीय सीमा के उस पार उत्तर-पश्चिम में किस प्रकार हुआ, इसका प्रामाणिक इतिहास है।... वे पहले हिन्दू थे जो अरबों के सम्पर्क में आये थे तथा अरब सभी हिन्दुओं को केवल जाट के नाम से जानते थे। (पृ. 11)

देशी-विदेशी षड्यंत्रकारियों के कारण असली नोटों जैसे कुछ नकली नोटों की तरह इनके विपरीत भी प्रमाण मिलते हैं। अपना व राष्ट्र का हित सोचकर ही हमें उनका प्रयोग करना चाहिये।

❑❑

समाज में बढ़ता पाखण्ड व ठगी और अन्धकारनाशक वेदविद्या

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

हमारे देश के पतन के कारणों में मुख्य कारण था विद्या का ह्रास तथा अन्धविश्वासों व पाखण्डों की वृद्धि। वर्तमान में देश में जो उन्नति देखी जा रही है, वह विद्या की कुछ उन्नति व अन्धविश्वासों व पाखण्डों में कुछ कमी के कारण है। महर्षि दयानन्द (1825-1883) ने देश की अवनति के कारणों को जाना था। इसी कारण उन्होंने विद्या अर्जित कर अज्ञान, पाखण्ड व अन्धविश्वासों का खण्डन किया। अन्धविश्वास, पाखण्ड व अज्ञान का सम्बन्ध हमारी हृदयस्थ भावनाओं से है। यह मन व हृदय का स्वाभाविक गुण है कि विद्याहीन हृदय, ज्ञान व विवेक के अभाव में, शीघ्र ही अज्ञान व अन्धविश्वासों से ग्रस्त हो जाता है। ऐसा ही हमारे देश में महाभारत काल के बाद हुआ। स्थितियाँ बिगड़ती चली गईं। यहाँ तक कि हम परतन्त्र हो गये और अपना सर्वस्व गँवा बैठे। ईश्वर की कृपा से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महर्षि दयानन्द का भारत भूमि पर प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने अज्ञान व अन्धविश्वास के स्वरूप तथा उसके मूल कारणों को समझा और योगबल व वेदज्ञान से सम्पन्न होने के कारण अपने गुरू प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द सरस्वती की आज्ञा व प्रेरणा से इनका खण्डन किया, जिससे इन अन्धविश्वासों का नामो-निशान देश से ही नहीं, अपितु अखिल विश्व से मिट जाये। यह काफी हद तक रूप से अपने कार्यों में सफल भी हुए। आज भी लोग अज्ञान व अन्धविश्वासों से ग्रस्त हैं व नई पीढ़ी भी निरन्तर अविद्या, अज्ञान व अंधविश्वासों से ग्रसित हो रही है। नये-नये भगवान व अवतार पैदा हो रहे हैं, जिनकी मूर्तियाँ स्थापित कर व बड़े-बड़े मन्दिर बनाकर पूजा की जा रही है। आर्यसमाज व हम चाह कर भी इसके निवारण में पूर्णतया सफल नहीं हो पा रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने शायद कहीं लिखा भी है कि यह तो ईश्वर का कार्य है। हमें तो हमसे जहाँ तक बन पड़े, मनसा, वाचा व कर्मणा सत्य ज्ञान व सत्य व्यवहार का प्रचार करना है। यही ईश्वर व वेदों की आज्ञा भी है और यही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का आधार भी है। उन्होंने स्वयं विश्व को इसकी राह प्रदर्शित की है।

आज हम सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास से पाखण्ड व अन्धविश्वास का एक प्रेरणादायी व प्रभावशाली प्रसंग ले रहे हैं। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं, (जन्मना हिन्दू) ईसाई, मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा और दूसरों का मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो। जब तक कि वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब तक आर्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की उन्नति व वृद्धि नहीं होती। जब विद्यावृद्धि के कारण वेदादि सत्यशास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान व सत्योपदेश होते हैं, तभी देशोन्नति होती है। बहुत सी पाखण्ड की बातें तुम को सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु, दुकानदार पुत्रादि देने की सिद्धियाँ बतलाता है, तब उस के पास बहुत सी स्त्रियाँ जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र माँगती हैं और बाबा जी सब को पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं। उनमें से जिस-जिस का पुत्र होता है, उनमें वह-वह स्त्रियाँ समझती हैं कि बाबा जी के वचन से ऐसा हुआ। जब उनसे कोई पूछे कि सूअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कटी

आदि के कच्चे-बच्चे किस बाबा जी के वचन से होते हैं, तब कुछ भी उत्तर न दे सकेगी। जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीवित रख सकता हूँ, तो आप ही क्यों मर जाता है?

कितने ही धूर्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पाँच-सात मिल के दूर-दूर देश में जाते हैं। जो शरीर से डीलडाल में अच्छा होता है, उस को सिद्ध बना लेते हैं। जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं उस के समीप जंगल में उस सिद्ध को बैठाते हैं। उसके साधक नगर में जाके अनजान बनके जिस-किसी को पूछते हैं- 'तुमने ऐसे महात्मा को यहाँ कहीं देखा वा नहीं, वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि महात्मा कौन और कैसा है? साधक कहता है- बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है, वह हो जाता है। बड़ा योगीराज है, उसके दर्शन के लिए हम अपने घर-द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर आये हैं। गृहस्थ कहता है कि जब वह महात्मा तुम को मिले तो हम को भी कहना। दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिन भर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्ध-साधक होकर खाते-पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राम में जाके उसी प्रकार दो तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुम को दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैयार होते हैं, तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हमसे कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन की, कोई रोग-निवारण की और कोई शत्रु के जीतने की। उनको साधक ले जाते हैं सिद्ध साधकों ने जैसा संकेत किया होता है अर्थात् जिस को धन की इच्छा हो उस को दाहिनी ओर, जिस को पुत्र की इच्छा हो, उसको सम्मुख और जिस को रोग-निवारण की इच्छा हो, उस को बाईं ओर और जिसको शत्रु को जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से ले जाकर सामने वाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं, उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की झपट से उच्च स्वर से बोलता है 'क्या यहाँ हमारे पास पुत्र रक्खे हैं, जो तू पुत्र की इच्छा करके आया है?' इसी प्रकार धन की इच्छा वाले से 'क्या यहाँ थैलियाँ रक्खी हैं जो धन की इच्छा करके आया है? फकीरों के पास धन कहाँ धरा है? रोगवाले से 'क्या हम वैद्य हैं, जो तू रोग छुड़ाने की इच्छा से आया? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुड़ावें, जा किसी वैद्य के पास' परन्तु जब उसका पिता रोगी हो, तो उस का साधक अंगूठा, जो माता रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो मध्यमा, जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है। तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों के चारों बड़े मोहित हो जाते हैं। साधक लोग उनसे कहते हैं, देखो! हम ने जैसा कहा था, वैसे ही हैं या नहीं?

गृहस्थ कहते हैं- हाँ जैसा तुमने कहा था, वैसे ही हैं। तुम ने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा भाग्योदय था, जो ऐसे महात्मा मिले। जिस के दर्शन करके हम कृतार्थ हुए। साधक- सुनो भाई। ये महात्मा मनोगामी हैं। यहाँ बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो कुछ इनका आर्शीवाद लेना हो, तो अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुकूल इन को तन, मन, धन से सेवा करो, क्योंकि 'सेवा से मेवा मिलती है।' जो किसी पर प्रसन्न हो गये, तो जाने क्या वर दे दें। 'सन्तों की गति अपार है।' गृहस्थ ऐसे लल्लो-पत्तों की बातें सुनकर बड़े

हर्ष से उनकी प्रशंसा करते हुए घर की ओर जाते हैं। साधक भी उनके साथ ही चले जाते हैं क्योंकि मार्ग में कोई उनका पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों को जो कोई मित्र मिला, उस से प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार से जो-जो साधकों के साथ जाते हैं, उन-उन का वृतान्त सब कह देते हैं। जब नगर में हल्ला मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध आये हैं, चलो उन के पास। जब मेला का मेला जाकर बहुत से लोग पूछने लगते हैं कि महाराज! मेरे मन का वृतान्त कहिये। तब तो व्यवस्था के बिगड़ जाने से चुपचाप होकर मौन साध जाता है और कहता है कि हम को बहुत मत सताओ। तब तो झट उसके साधक भी कहने लग जाते हैं कि जो तुम इन को बहुत सताओगे, तो ये चले जायेंगे और जो कई बड़ा धनाढ्य होता है, यह साधक को अलग बुला कर पूछता है कि हमारे मन की बात कहला दो तो हम सच मानें। साधक ने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्य ने उससे कह दी। तब उसको उसी प्रकार से संकेत से ले जाकर बैठा देता है। उसे सिद्ध ने समझ के झट से कह दिया, तब तो सब मेला भर ने सुन ली कि अहो! बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेंट करता है। फिर जब तक उस तथाकथित सिद्ध पुरुष की मान्यता बहुत सी रहती है, तब तक यथेष्ट लूट करते हैं और किन्ही-किन्हीं आँख के अन्धे गाँठ के पूरों को पुत्र होने का आशीर्वाद या राख उठा के दे देता है और उससे सहस्रों रूपये लेकर कह देता है कि तेरी सच्ची भक्ति होगी, तो तेरा पुत्र हो जायेगा। इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं, जिनकी विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं।

इसलिए वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना व सत्संग आदि करना होता है कि जिससे कोई उस को ठगाई में न फंसा सके तथा वह औरों को भी बचा सके। क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। बिना विद्या व शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था में ही उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिन को कुसंग है, वे दुष्ट पापी महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं। इसीलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है, वही मानता है।

"न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्ष स तस्य निन्दां सततं करोति।

यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः।।"

यह किसी कवि का श्लोक है। जो जिस का गुण नहीं जानता, वह उस की निन्दा निरन्तर करता है। जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जा का हार पहिन लेता है, वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक सत्पुरूषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय व सुशील होता है, वही धमार्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।

हम आशा करते हैं कि पाठक महर्षि दयानन्द की उपर्युक्त पक्तियों में निहित उनकी मानवहित की भावनाओं को जानकर स्वार्थी व पाखण्डी ठग साधुओं से न केवल स्वयं को बचायेंगे अपितु अपने निकटवर्ती अन्यों को भी बचायेंगे। हम पाठकों को सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ पढ़ने की सलाह देंगे, जिसमें सभी धार्मिक पाखण्डों की ज्ञान, युक्ति, तर्क व प्रमाणों सहित पोल खोली गई है तथा जिसको जानकर न केवल मनुष्यमात्र का हित होता है, अपितु हमारा समाज व देश भी लाभान्वित होता है। जीवन में उन्नति का मन्त्र है- "असतो मा सदगमय, तमसो मो ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय।।" इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

❑❑

ईश्वर की सर्वज्ञता और कर्मफल - कुछ विचारणीय बातें

- भावेश मेरजा
(८-१७ टाउनशिप, पो. नर्मदानगर, जि. भरुच)

सत्यार्थ प्रकाश से सप्तम समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है -

(प्रश्न)- *परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इस से भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।*

(उत्तर)- *ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। क्योंकि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है। हां, जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य हैं। क्या कर्म-ज्ञान सच्चा और दण्ड-ज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई भी दोष नहीं आता।* ***('सत्यार्थ प्रकाश' सप्तम समुल्लास)***

सामान्य पाठकों को सत्यार्थ प्रकाश का उक्त स्थल समझने में पर्याप्य कठिन लगता है। इस सन्दर्भ को समझने में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं -

1. यह तो निर्विवाद है कि जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर जीवों के कर्मों का यथायोग्य न्यायपूर्वक फल देता है, अर्थात् वह कर्मफलदाता है। फल देने के लिए ईश्वर को मनुष्य अथवा जीव के सर्व कर्मों का ठीक-ठीक ज्ञान होना परम आवश्यक है। अन्यथा वह ठीक-ठीक न्याय नहीं कर सकता। इस जीव ने अभी तक मनुष्य तन पाकर क्या-क्या कर्म किए हैं, यह जानकर ही तो ईश्वर द्वारा उसे न्यायोचित फल दिया जा सकता है। मोक्षावस्था के पश्चात् जीव का जन्म मनुष्य योनि में होता है उसका आधार भी तो उस जीव के शेष बचे कर्मों को ही माना जाता है। अर्थात् ईश्वर के ज्ञान में उस जीव के उन शेष कर्मों का ज्ञान भी इतने अत्यन्त दीर्घ काल व्यतीत होने पर भी बना रहता है। अन्यथा मोक्ष के पश्चात् किस आधार पर ईश्वर उसको

मनुष्य के रूप में जन्म दे पाता ? कर्मफल हेतु ईश्वर को जीव के समस्त कर्मों का ज्ञान होना अपेक्षित है । उसका निषेध कैसे किया जा सकता है ? इसीलिए तो ऋषि ने लिखा है कि ईश्वर का 'कर्म-ज्ञान' सत्य ही होता है । अतः इतना तो आसानी से समझ में आता है कि मनुष्य अपने जीवन में जैसे-जैसे नए-गए कर्म करता जाता है, वैसे-वैसे ईश्वर भी उसके उन सभी कर्मों को यथावत् जानता जाता है । सत्यार्थ प्रकाश के इसी समुल्लास में यजुर्वेद ४०.१६ मन्त्र के अर्थ में ऋषि ने ईश्वर के लिए लिखा है - 'सब को जाननेहारे परमात्मन्' - **विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्** । ईश्वर सब को जानता है अर्थात् वह सभी जीवात्माओं के समस्त कर्मों को भी जानता है । जीवात्मा अल्पज्ञ होने से अपने समस्त कर्मों को स्वयं भी नहीं जान सकता है । समस्त जीवों के समस्त कर्मों का यथावत् ज्ञान केवल और केवल ईश्वर ही रख सकता है ।

2. वैसे ईश्वर का ज्ञान उसका स्वाभाविक गुण ही माना जाता है । परन्तु ईश्वर को जीवों के कर्म का जो ज्ञान होता है, उस ज्ञान को क्या उसका (ईश्वर का)नैमित्तिक ज्ञान माना जाना चाहिए ? यह विचारणीय है । क्योंकि यह ज्ञान तो निमित्त से अर्थात् जीवों के कर्म-स्वातन्त्र्य से ही, कर्म करने के पश्चात् ही ईश्वर को होता होगा । ईश्वर को नैमित्तिक ज्ञान होने की बात पुनः उसकी सर्वज्ञता पर आपत्ति पैदा करती है ।

3. यह भी विचारणीय है कि क्या ईश्वर अनुमान करता है ? या उसका समस्त ज्ञान केवल प्रत्यक्ष ही होता है ? जैसे हम अल्पज्ञ जीव अनुमान का अवलम्बन करते हैं और विधिवत् किया गया हमारा अनुमान प्रायः सत्य सिद्ध होता है, क्या वैसे ईश्वर भी हम जीवों के भावी कर्मों का अनुमान करता होगा ? जैसे कि, मोहन प्रति रविवार आर्य समाज जाता है । उसने प्रण किया है ऐसा । तो क्या अगले रविवार को भी मोहन आर्यसमाज जाएगा - ऐसा अनुमान ईश्वर के ज्ञान में सम्भव है ? मोहन उस दिन वास्तव में आर्यसमाज जाता है या नहीं - यह तो उस अगले रविवार को ही निश्चित होगा । मगर कुछ पूर्व अनुमान भी तो किया ही जा सकता है । ईश्वर तो सर्व जीवों के भूत एवं वर्तमान के सम्बन्ध में सब कुछ जानता है, अतः उसका अनुमान तो एक दृष्टि से 'पूर्ण अनुमान' ही होगा । क्या ईश्वर को हमारे भावी कर्मों का अनुमान आधारित ज्ञान होता है ऐसा मानने में कोई सिद्धान्त-दोष दिखाई देता है ?

4. हां, इसमें इतना तो स्पष्ट है कि हम अल्पज्ञ मनुष्य ज्ञान-प्राप्ति के लिए जैसे आठ प्रमाणों का बुद्धिपूर्वक प्रयोग करते हैं, वैसा प्रमाणों का प्रयोग करने की तो ईश्वर को बिल्कुल आवश्यकता नहीं पड़ती होगी, क्योंकि वह सर्वव्यापक, इन्द्रियादि रहित, चेतन सत्ता है । फिर भी जीव के पूर्व कर्म, संकल्प, प्रयत्न, सामर्थ्य आदि को जानकर उन्हीं के आधार पर क्या ईश्वर उस जीव के द्वारा किए जाने वाले भावी कर्म का कुछ

भी अनुमान नहीं कर सकता होगा ? सर्वज्ञ होने का तात्पर्य क्या यह है कि उसे जीवों के इन भावी कर्मों की सम्भावनाओं का किञ्चित् भी ज्ञान नहीं होना चाहिए ? क्या वह उसके ज्ञान का विषय ही नहीं होता होगा ?

5. कई आर्य विद्वानों का मन्तव्य है कि ईश्वर सर्वज्ञ होने से उसके ज्ञान में किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं मानी जा सकती । हां, उसके 'ज्ञान की आवृत्ति' तो मानी जा सकती है, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि मानने से तो उसकी सर्वज्ञता ही खण्डित हो जाएगी । ईश्वर की सर्वज्ञता खण्डित न हो जाए इसलिए ऐसा समाधान प्रस्तुत किया जाता है कि जीवात्माएं क्या-क्या कर सकती हैं, कितने विभिन्न प्रकार के शुभ, अशुभ और मिश्र कर्म कर सकती हैं, इसका अर्थात् ऐसे सम्भावित समस्त कर्मों की सूची ईश्वर को अनादि काल से पता है । अतः कोई भी मनुष्य चाहे कोई भी कर्म करे, उसका वह कर्म ईश्वर के उस ज्ञान की दृष्टि से सर्वथा नया कर्म नहीं होगा । क्योंकि वह इस बात को सदैव जानता ही होता है कि मनुष्य या जीवात्मा ऐसा, इस प्रकार का कर्म भी कर सकता है । इस दृष्टि से विचार करने से ईश्वर की सर्वज्ञता भी बनी रहती है ।

6. यह भी विचारणीय है कि ऋषि दयानन्द के - "जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है ।" - इस कथन में जो 'करता' और 'जानता' लिखा गया है, क्या ये उपर्युक्त 'समस्त जीवों के सम्भावित समस्त कर्मों की सूची' के सन्दर्भ में लिखा गया है, या एक-एक जीव के द्वारा किए जाने वाले कर्म-विशेष को ध्यान में रखकर लिखा गया है ?

7. क्या सूची वाले उपर्युक्त समाधान से हमारी एतद् विषयक जिज्ञासा का पूर्ण समापन हो जाता है ? जैसे कि - मोहन नामक मनुष्य ने आज कोई पुण्य कर्म किया । अब ईश्वर को इस बात का ज्ञान तो तत्काल अर्थात् उसी समय अवश्य हो ही जाएगा कि मोहन नामधारी इस मनुष्य आत्मा ने आज यह एक पुण्य कर्म किया है । बिना इस ज्ञान के वह मोहन की आत्मा को उस कर्म का आगे शुभ फल कैसे दे सकता है ? मोहन के उस कर्म की ईश्वर को हुई इस जानकारी को ईश्वर के ज्ञान में हुई वृद्धि समझनी चाहिए या केवल 'आवृत्ति' ? - यह विचारणीय है ।

8. सामान्य दृष्टि से तो मोहन द्वारा किए गए इस कर्म की जानकारी ईश्वर को उस कर्म करते समय ही हुई होने से उसे ईश्वर के ज्ञान में हुई वृद्धि या नवीन ज्ञान ही प्रतीत होता है । मगर जैसा ऊपर बताया गया है कि ईश्वर में ज्ञान-वृद्धि हमें सिद्धान्त रूप में स्वीकार्य इसलिए नहीं है कि हम उसे सर्वज्ञ मानते हैं और सर्वज्ञ के ज्ञान में वृद्धि कैसे मानी जा सकती है ? दूसरी ओर बिना कर्म को जाने कि इस आत्मा के द्वारा यह

कर्म हुआ है, ईश्वर किसी जीव-विशेष को इस कर्म का फल भी कैसे प्रदान करेगा ? – यह समस्या सुलझाने की महती आवश्यकता है । क्योंकि जीवात्माओं के समस्त सम्भावित कर्मों की सामान्य सूची का ईश्वर को सदा से ज्ञान होना एक बात है, और किसी जीव-विशेष द्वारा, कौन-सा कर्म, क्यों और कब किया गया, यह सब जानना विशेष बात है । कर्मफल के लिए तो ईश्वर को विशेष बात का कि इस आत्मा ने यह कर्म किया ऐसा ज्ञान होना आवश्यक प्रतीत होता है, ऐसा हमारी सामान्य बुद्धि में आता है । केवल उपरोक्त सभी जीवात्माओं के समस्त सम्भावित कर्मों की सामान्य सूची के ज्ञान से तो किसी जीव-विशेष को उसके कर्म-विशेष का फल कैसे दिया जा सकता है ? - यह भी तो ठीक से समझना होगा ।

इसलिए आर्य दार्शनिक चिन्तकों से विनम्र निवेदन है कि वे इस समस्या पर उचित मार्गदर्शन प्रस्तुत करने की कृपा करें, जिससे सत्यार्थ प्रकाश का यह स्थान हमारे जैसे सामान्य पाठकों की समझ में ठीक-से आ सकें । आदरणीया श्रीमती उत्तरा जी नेरूर्कर ने 'दयानन्द सन्देश' के जनवरी-२०१४ के अंक में इसी विषय को लेकर अपने विचार प्रकट किए हैं । उनका वह लेख भी एतद् विषयक चिन्तन सामग्री प्रदान करता है ।

ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर

ऋषिवर के हो तुम कौन कहो! शिष्य, भक्त या अनुचर
पूर्वज हितचिन्तक उन्हें कहोगे या सहसा कहोगे गुरुवर
कहो गर्व से अहो! आर्यो ऋषि थे जग के पथदर्शक
ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर ॥

सदा सत्य स्वीकार जिन्हें था, किया असत्य से ना समझौता,
चुम्बकीय व्यक्तित्त्व-वाणी, कीर्त्ति-गाथा जिनकी उज्ज्वल थी।
कष्ट सहे थे सबकी खातिर, कार्य किये सुखवर्धक॥
ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर ॥

सूर्य समान प्रकाशित जीवन, हर पल मिलती सबल प्रेरणा,
हो संसार सुखी, सब प्राणी हर्षित हों, ऐसी रही कामना।
त्रुटिरहित जग के जन-जन हों, एक-दूजे के होवें रक्षक॥
ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर ॥

लक्ष्य सिद्धि की दृढ़ता ऐसी, झुका सका ना कोई प्रतिरोध,
तत्परता वीरोचित कर्मठ, सूक्ष्म दृष्टि रख करते शोध।
दया से द्रवित, न्यायहित जूझे, क्रान्तिकारी बनकर सर्जक॥
ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर ॥

प्रान्त देश जाति की सीमा, चर्चा जिसने कभी नहीं की,
मानवता उपकार प्रेरणा, एक समान सभी को दी।
मत पंथों की हटे परिधि, ऋषि थे सबके शुभचिन्तक॥
ऋण उनका चढ़ा है हम सब पर ॥

(सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरूत',
आर्यसमाज, नेमदार गंज, नवादा-बिहार)

❑❑

उपनिषदों का महत्त्व
(स्व. श्री पं. राजवीर शास्त्री)

मनुष्य साँसारिक दुःखों से सन्तप्त होकर सृष्टि के आदिकाल से परमशान्ति तथा शाश्वत सुख की खोज करता रहा है। साँसारिक भोगों के सुख क्षणिक तथा नश्वर होते हैं, उनमें शाश्वत-सुखों की आशा करना मरु-मरीचिकाओं में जल समझने के समान ही है। साँसारिक भोगों को भोगते-भोगते मानव समस्त जीवन बिता देता है, किन्तु परम सुख प्राप्त नहीं होता। महाराज भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।। (भर्तृहरि०)

अर्थात् भोग भोगे नहीं जा सकते, हमें ही भोग खा जाते हैं। अर्थात् जीवन समाप्त हो जाता है कि भोग-कामनाओं की तृप्ति नहीं होती। मनु जी के शब्दों में भोगों को भोगने से-

न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।। (मनु०)

कभी भी वासनाओं की शान्ति नहीं होती, प्रत्युत कामनाओं की वैसे ही वृद्धि होती है, जैसे घृतादि से अग्नि प्रचण्ड हो जाती है। धन-धान्यादि से सम्पन्न देश इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि उन देशों में भौतिक सुखों की न्यूनता न होते हुए भी सुख व शान्ति कहाँ? उपनिषत्कार ने ठीक ही कहा है कि-

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। (कठोप० 2/27)

अर्थात् मनुष्य साँसारिक धनों या पदार्थों से कभी तृप्त नहीं हो सकता। समस्त वैदिक दर्शनों का भी यही लक्ष्य रहा है कि शाश्वत-सुख (मोक्ष) कैसे उपलब्ध हो सके। संसार की प्राचीनतम पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान वेदों में मोक्ष-प्राप्ति या परम सुख का उपाय शुद्धान्तःकरण करके धर्मानुष्ठान करते हुए परब्रह्म का जानना ही है। वेद में कहा है-

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।
(यजु० 31/18)

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः। (यजु० 25/13)

अर्थात् परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु-दुःखों से पार होकर मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है, इससे भिन्न और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि उस परमब्रह्म का आश्रय (शरण) अमृत-मोक्ष सुखप्रद है और उसकी अकृपा या उपासना न करना ही मृत्यु-दुःखों का कारण है। उस परब्रह्म को जानने व प्राप्त करने के लिए ऋषि-मुनियों ने जीवन भर तपस्यारत होके जो ज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) प्राप्त किया है, उसी का संग्रह उपनिषद् ग्रन्थों में है। इसलिए इन्हें ब्रह्मज्ञान की उत्कृष्टतम पुस्तकें भी माना जाता है।

'उपनिषद्' शब्द का यौगिकार्थ भी इसी बात की पुष्टि करता है। इस शब्द में 'उप' तथा 'नि' दो उपसर्ग तथा 'षद्लृ' धातु है, जिसका अर्थ यह है- 'उप सामीप्येन नितरां सीदन्ति प्राप्नुवन्ति परं ब्रह्म यया विद्यया सा उपनिषद्।' अर्थात् उपनिषद् वह विद्या है, जिसके द्वारा परब्रह्म का ज्ञान होने से परब्रह्म के सामीप्य को प्राप्त किया जा सके। और उपनिषत्=परब्रह्म-ज्ञान का प्रतिपादन करने से 'ईशादि' ग्रन्थों का नाम भी उपनिषद् प्रसिद्ध हुआ। श्री शङ्कराचार्य जी ने उपनिषत् की व्याख्या करते हुए लिखा है- "सेयं ब्रह्मविद्या उपनिषद् वाच्या संसारस्यात्यन्तावसादनात् उपपूर्वस्य सदेस्तदर्थत्वात् ग्रन्थोऽप्युपनिषद् उच्यते।" (ब्रहदा० भूमिका) अर्थात् यह उपनिषद् नामक ब्रह्मविद्या संसार के अत्यन्त अवसादन=उच्छेद करने के लिए है। उपपूर्वक सद् धातु का ऐसा अर्थ होने से। किन्तु यह सत्य नहीं है। उपनिषत्

से दुःखोच्छेद होता है, संसारोच्छेद नहीं। यह-विद्या अत्यन्त गूढ़ होने से 'रहस्य' नाम से भी जानी जाती है। व्याकरण महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि ने उपनिषत् को 'रहस्य' नाम देकर लिखा है-

चत्वारो वेदाः साङ्गा सरहस्या बहुधा भिन्नाः।

(महा० पस्पशा०)

महर्षि पाणिनि ने 'जीविकोपनिषदावौपम्ये' (अ० 1/4/69) सूत्र में 'उपनिषत्' शब्द का 'छिपाने अर्थ' में प्रयोग किया है। उपनिषत्कृत्य गतः।' अर्थात् किसी बात को छिपाकर अथवा 'रहस्यात्मक' बनाकर चला गया। इससे भी उपनिषद् विद्या का रहस्यात्मक स्वरूप ही प्रकट होता है। कठोपनिषद् में नचिकेता के तीसरे वरदान के रूप में आत्मविद्या के पूछने पर यमाचार्य ने उसको अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये और अन्त में उसको योग्यतम विद्याधिकारी समझ कर आत्मविद्या का उपदेश करते हुए इस विद्या के विषय में कहा था-

आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।। (कठो० 2/7)

अर्थात् इस विद्या का उपदेष्टा तथा श्रोता दोनों ही विरले होते हैं। कोई आत्मतत्व का साक्षात्कार करने वाला ही इस विद्या का उपदेश कर सकता है। दूसरे पुरुषों की इसमें गति ही नहीं होती। और 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः' के अनुसार आत्मज्ञान परमेश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है।

भारतीय तत्वदर्शी परमात्मा-द्रष्टा ऋषि-मुनियों ने इस रहस्यात्मक विद्या का पूर्णरूप से ज्ञान करके विश्व को सर्वप्रथम उपदेश दिया था। इसलिए भारत देश को विश्व के दार्शनिक आज भी आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व का गुरु मानते हैं। इस उपनिषद्-विद्या से वैदिक धर्मी ही नहीं, प्रत्युत अनेक विधर्मी व विदेशी भी इन्हें पढ़कर मन्त्रमुग्ध से रह गए हैं। इस्लामधर्मावलम्बी दाराशिकोह; मंसूर, सर्मद, फैजी तथा बुल्लाशाह की उपनिषद्-भक्ति से कौन भारतीय परिचित नहीं है? दाराशिकोह ने औपनिषद्-सिद्धान्तों को स्वीकार ही नहीं किया, प्रत्युत फारसी भाषा में इसका अनुवाद भी किया और उन सिद्धान्तों को अपने जीवन का सर्वस्व भी बनाया। मंसूर और सर्मद ने तो सिर देकर भी उपनिषद्-सिद्धान्तों को नहीं छोड़ना चाहा। पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर, शोपेनहार और गोल्डस्टकर आदि ने उपनिषदों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

विदेशी विद्वानों के विचार-

1. "उपनिषद् वेदान्तदर्शन के आदिस्रोत हैं और ये ऐसे निबन्ध हैं, जिनमें मुझे मानवी भावना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई मालूम होती है।" (मैक्समूलर)

2. "सारे संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है, जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो। वे उच्चतम बुद्धि की उपज है। उपनिषद् मेरे जीवनरूपी सरोवर में अमृत सींचने वाले हैं। आगे या पीछे एक दिन ऐसा होना ही है कि यही जनता का धर्म होगा।" (शोपेनहार दार्शनिक)

3. "वेदान्त सबसे ऊँचे दर्जे का मन्त्र है, जिसे पूर्वीय विचारधारा ने प्रवृत्त किया है।" (डॉ. गोल्डस्टकर)

4. "संसार में सुकरात, अरस्तु, अफलातून आदि सैकड़ों धुरन्धर विद्वान् हो चुके हैं, परन्तु सब से अधिक विद्वान् वे थे, जिन्होंने उपनिषदों की रचना की। इनसे बढ़कर न कोई विद्वान् हुआ है और न भविष्य में कोई होगा।" (मिस्टर होम)

5. "उपनिषदों का ज्ञान प्रत्येक निराशावादी के हृदय के लिए अति सन्तोषजनक और शान्ति-उत्पादक होता है। ये परमात्मा की प्राप्ति के लिए ऐसे ही हैं, जैसे प्रातःकालीन वाटिका का भ्रमण मन को आह्लादित करता है। अञ्जील में तो खुदा मनुष्यों की खोज में है, परन्तु उपनिषदों में मनुष्य परमात्मा की खोज में फिरता है।" (पादरी मर्डक)

6. "जिन समस्याओं को रोमन, ग्रीक सुलझा न सके, जिन प्रश्नों ने मध्यकालीन और आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं को परेशान कर रक्खा है, उन सब का उत्तम और समुचित उत्तर दर्शनों (उपनिषदों) में विद्यमान है।" (सर डब्ल्यू० हण्टर)

7. सन् 1775 में एंक्वेटिल डूपारन को दाराशिकोह द्वारा अनूदित फारसी की पाण्डुलिपि देखने को मिली। उसने फारसी का अनुवाद फ्रेंच तथा लैटिन भाषा में किया। उसमें डूपारन महोदय लिखते हैं-

"ये उपनिष्झद् योगविद्या और ब्रह्मविद्या के भण्डार हैं। जैसे-जैसे मनुष्य इनका स्वाध्याय करता है, मनुष्य का हृदय शान्त होता जाता है, उसकी विचार-शक्ति बढ़ती है, मन की विकलता घटती है और विचारों में उत्तेजना तथा मन में आनन्द प्रतीत होता है।"

8. "उपन्षिद् ग्रन्थ अनमोल रत्न हैं, जो मनुष्य जाति के लिए धार्मिक स्फूर्ति एवं बल तथा आत्मिक जीवन के लिए सब से अधिक पवित्र एवम् उपजाऊ पदार्थ और उत्तम समूह हैं।" (रेवरेण्ड ए० आयंस गेडन)

इस प्रकार उपनिषदों का महत्व विदेशी, स्वदेशी तथा अन्य मतावलम्बियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यथार्थ में ब्रह्मविद्या का अमृत जिसने भी थोड़ा सा चखा, वह इसे फिर नहीं छोड़ सका। इस विद्या के मर्मज्ञ को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह उसे वाणी से वर्णन नहीं कर सकता। उपनिषत्कार स्वयं कहते हैं- "न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते।"

भारतीय विद्वानों के उपनिषदों के सम्बन्ध में विचार-

1. "उस महान् प्रभु परमात्मा की पूँजी केवल उपनिषदों में ही सम्पूर्णतया और विस्तारपूर्वक लिखी है जो कि वेद और वेदान्त का एक विशेष भाग है।" (राजा राममोहनराय)

2. "वेद तो सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं के भण्डार हैं, जो परमात्मा ने मनुष्यों को दान दे रक्खे हैं। परन्तु उपनिषद् ईश्वर के एकत्व और अध्यात्मविद्या का उपदेश करते हैं, जो सम्पूर्ण वर्तमान विज्ञान और पदार्थविद्या की भी माता हैं। इसके सिद्धान्त आत्मा को अत्यन्त शान्तिदायक हैं। (पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर)

3. "चक्षु-सम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारत का ब्रह्मज्ञान समस्त पृथिवी का धर्म बनने लगा है।" (विश्वकवि डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

4. "उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। उपनिषत् कहते हैं- हे मानव! तेजस्वी बनो, वीर्यवान् बनो, दुर्बलता को त्यागो।... उपनिषत् शक्ति की विशाल खान हैं।... मुक्ति अथवा स्वाधीनता दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता आध्यात्मिक स्वाधीनता, यही उपनिषदों के मूल मन्त्र हैं।" (स्वामी विवेकानन्द)

❑❑

वर्ण-व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं है

पं० घासीराम लिखित स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित

एक दिन एक मनुष्य ने स्वामी दयानन्द से जातिभेद का प्रसंग उठाया। तब महाराज ने कहा कि ब्राह्मणि वर्ण जन्मगत नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो तो एक ब्राह्मण के दो पुत्रों में से एक ईसाई और दूसरा मुसलमान हो जाए तो क्या फिर भी वे ब्राह्मण ही माने जायेंगे ? यदि नहीं माने जायेंगे तो फिर जन्म से ब्राह्मणत्व कहाँ रहा ?

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

मौलवी अब्दुल रहमान साहब न्यायाधीश से उदयपुर में शास्त्रार्थ

11, 13 तथा 17 सितम्बर, 1882 ई०

(दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह से उद्धृत)

पण्डित बृजनाथ जी शासक साइर मेवाड़ देश (जो उस समय इस शास्त्रार्थ को लिखने वाले थे) ने कथन किया कि मैं उस समय स्वामी जी और मौलवी के मध्य दुभाषिया भी था। अर्बी के कठोर शब्दों का अर्थ स्वामी जी को और संस्कृत के कठिन शब्दों का अर्थ मौलवी को बता दिया करता था। यह शास्त्रार्थ मैंने उस समय अपने हाथ से लिखा, जिसका मूल लेख पेंसिल का लिखा हुआ अभी तक विद्यमान है।

तीन मनुष्य इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे। एक पण्डित बृजनाथ जी शासक साइर, दूसरे मिर्जा मोहम्मद अली खां भूतपूर्व वकील वर्तमान सदस्य विधान सभा टौंक, तीसरे मुन्शी रामनारायण जी सरिश्तेदार, बागकलां सरकारी जिन में से 1 व 3 सज्जनों के मूल लेख हम को मिल गये हैं और जिनका मौलवी साहब ने समर्थन भी किया है परन्तु उन की बुद्धिमानी तथा ईमानदारी पर खेद है कि उस समय तो कोई युक्तियुक्त उत्तर न दे सके और पीछे से दिसम्बर सन् 1889 में निर्मूल और झूठे-झूठे उद्धरण देकर मूललेख के विरुद्ध कुछ का कुछ प्रकाशित करके अपनी धार्मिकता का चमत्कार दिखाया। इस शास्त्रार्थ के दिन सामान्य तथा विशेष हिन्दू तथा मुसलमान सुनने वालों की बहुत अधिकता थी यहाँ तक कि श्री दरबार बैकुण्ठवासी महाराजा सज्जनसिंह भी शास्त्रार्थ सुनने के लिए पधारे हुए थे।

"स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिण्टेण्डैण्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर मेवाड़ देश के मध्य होने वाला शास्त्रार्थ"

11 सितम्बर, सन् 1882 तदनुसार भादों बदि चौदश, संवत् 1939, सोमवार।

मौलवी साहब- (प्रथम प्रश्न) **ऐसा कौन सा मत है जिस की मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो?** जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है जैसे भारतीय वेद, पुराण या चीन वाले चीनी, जापानी, बर्मी बौद्ध वाले, फारसी जिन्द वाले, यहूदी तौरेत वाले, नसरानी इञ्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले तो प्रकट होता है कि उन के धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं जो एक दूसरे से नहीं मिलते और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं, जहाँ वह बना है। जिन में से कोई एक लक्षण तथा चिन्ह उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उस के प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उस का मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन-सा मत सत्य समझना चाहिये।

उत्तर स्वामी जी का- मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं क्योंकि पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से रहित है, वह मेरे विचार में सत्य है और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध न होना भी आवश्यक है। मैंने जो खोज की है उस के अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसी नहीं है जो विश्वास के योग्य हो क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में है और वेद की भाषा किसी देश विशेष की भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल

कारण है और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निषिद्ध बुराइयों की परिचायक है और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

प्रश्न मौ०- क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है?

उत्तर स्वा०- वेद मत की पुस्तक नहीं है, प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

प्रश्न मौ०- मत का आप क्या अर्थ करते हैं?

उत्तर स्वा०- पक्षपात सहित को मत कहते हैं इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकती।

प्रश्न मौ०- हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचारों पर और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन-सी पुस्तक पूर्ण है सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है या नहीं?

उत्तर स्वा०- हाँ है।

प्रश्न मौ०- आपके कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती उनके अन्तर्गत समस्त भाषाएँ कैसे हो सकती हैं?

उत्तर स्वा०- जो किसी देश विशेष की भाषा होती है, वह किसी दूसरी देशभाषा में व्यापक नहीं हो सकती क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

प्रश्न मौ०- जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती, तो जब वह किसी देश की है है नहीं, तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है?

उत्तर स्वा०- जो एक देश की भाषा है उसे व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं, वह सब भाषाओं में व्यापक है। जैसे-आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

प्रश्न मौ०- यह भाषा किसकी है?

उत्तर स्वा०- विद्या की।

प्रश्न मौ०- बोलने वाला इसका कौन है?

उत्तर स्वा०- इसका बोलने वाला सर्वदेशी है।

मौलवी- तो वह कौन है?

स्वामी- वह परब्रह्म है।

मौलवी- यह किस को सम्बोधन की गई है?

स्वामी- आदि सृष्टि में इस के सुनने वाले चार ऋषि थे, जिन का नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त करके दूसरों को सुनाया।

मौलवी- इन चारों को ही विशेष रूप से क्यों सुनाया?

स्वामी- वे चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे।

मौलवी- क्या इस बोली को वे जानते थे?

स्वामी- उसे जानने वाले ने उसी समय उन को भाषा भी जना दी थी अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उन को भाषा का ज्ञान दे दिया।

मौलवी- इस को आप किन युक्तियों से सिद्ध करते हैं?

स्वामी- बिना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता।

मौलवी- बिना कारण के कार्य होता है या नहीं?

स्वामी- नहीं।

मौलवी- इस बात की क्या साक्षी है?

स्वामी- ब्रह्मादि अनेक ऋषि की साक्षी है और उन के ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

मौलवी- यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धिविरुद्ध है। कारण कथन कीजिये।

स्वामी- वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है।

मौलवी- इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं।

स्वामी- ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं है और न वे सिद्ध कर सकते हैं।

मौलवी- पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं?

स्वामी- मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते (और यदि कर सकते हैं, तो बताइये कि मौहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुँचा)।

मौलवी- जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया।[1]

दूसरा प्रश्न-

प्रश्न मौलवी- समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के?

उत्तर स्वामी- जुदी-जुदी जातियों के हैं।

मौलवी- किस युक्ति से?

स्वामी- सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य-शरीर धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर-धारण करने के योग्य होते हैं और वे जीव असंख्य होने से अनेक हैं।

मौलवी- इस का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

स्वामी- अब भी सब ही अनेक मां-बाप के पुत्र हैं।

मौलवी- इस के विश्वसनीय प्रमाण कहिये।

स्वामी- प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण।

मौलवी- वे कौन से हैं?

स्वामी- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऐतिह्य, सम्भव, उपमान, अभाव, अर्थापत्ति।

प्रश्न मौलवी- ये जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने?

उत्तर स्वामी- मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है।

मौलवी- किस-किस रंग में क्या-क्या भेद है?

स्वामी- छोटाई-बड़ाई में किञ्चिन्मात्र अन्तर है।

मौलवी- यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के है अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं?

स्वामी- एक-एक देश में अनेक हैं। जैसे एक मां-बाप के पुत्रों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

मौलवी- हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं, तो आपके कथनानुसार नहीं पाते। एक ही देश में कई जातियाँ जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी इत्यादि देखने में पृथक्-पृथक् विदित होती हैं अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकोने मुंह के होते हैं हब्शी, मलन्गई, चीनी, तीनों की आकृतियां परस्पर नहीं मिलतीं। एक ही देश में यह भेद क्योंकर है?

स्वामी- उन में भी अन्तर है।

मौलवी- दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है?

स्वामी- देशकाल और मां-बाप आदि के शरीरों में कुछ-कुछ भेद है। समस्त शरीर रज वीर्य के अनुसार बनते हैं। वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग-वियोग से भी कुछ भेद होते हैं।

मौलवी- हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं, जिन का विभाजन इस प्रकार है- दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी के, घुंघरू बाल वाले। दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्बी, मिश्री आदि। बेदाढ़ी वाले चीनी, जापानी, कैमिस्टका के। घुंघरू बाल वाले हब्शी। इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत-सा भेद है। एक दूसरे से नहीं मिलता और यह भेद आपके कथनानुसार ऊपर वाले कारणों से है। यदि एक देश के रहने वाले ये तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें, तो कभी भेद नहीं होता। जाति समान है। इस अवस्था में संसार के मूलपुरुष आपके कथनानुसार तीन हुए, अधिक नहीं।

स्वामी- भोटियों को किस में मिलाते हैं। वे किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक सम्पत्ति विदित होती है।

1. खेद है कि मौलवी साहब ने बिना सोचे-समझे ऐसा कह दिया। यह किसी प्रकार ठीक नहीं। न ते कुरान आदि सृष्टि में मोहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियाँ ही ऐसी हैं, जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों और न उसकी भाषा ही ऐसी है। मोहम्मद साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं, जिनमें कोई मोहम्मदी भाई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है। - सम्पादक

मौलवी- जैसा भेद इन तीनों में है, वैसा दूसरे में नहीं। तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती।

तीसरा प्रश्न-

प्रश्न मौलवी- मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा?

स्वामी- एक अरब छयानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी।

मौलवी- इसका क्या कारण और प्रमाण है?

स्वामी- इस का हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

मौलवी- वह हिसाब बतलाइये?

स्वामी- भूमिका के पहले अङ्क में लिखा है और हमारे ज्योतिषशास्त्र से सिद्ध है, देख लो।

चौथा प्रश्न-

(13 सितम्बर, सन् 1882, बुधवार तदनुसार भादों सुदि एकम, संवत् 1939 विक्रमी)

प्रश्न (मौलवी जी की ओर से)- आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं या नहीं?

उत्तर (स्वामी जी की ओर से)- **जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है, उस को मानते हैं।**

प्रश्न मौलवी- आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया?

उत्तर स्वामी- प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से।

मौलवी- यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुँची?

स्वामी- शब्दानुक्रम से और उन के ग्रन्थों से।

मौलवी- प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जायेंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं। अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं।

स्वामी- बुद्धि के अनुकूल वह है, जो विद्या से सिद्ध हो चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे। समस्त बुद्धिमान् इस को मानते हैं और आप भी।

मौलवी- इस कथन के अनुसार ब्रह्म का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है?

स्वामी- बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो। यह सनातन विद्या परमेश्वर में उस की कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है, उसी प्रकार उस की विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है। यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता तो सृष्टि-नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है, इस का क्रम ही न चलता।

मौलवी- ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया?

स्वामी- ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्-पृथक् और क्रमशः पढ़ाता गया क्योंकि वे चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे और प्रत्येक की बुद्धि प्राप्ति की शक्ति भिन्न-भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्-पृथक् समझकर एक साथ पढ़ते रहे। जिस प्रकार चारों वेद पृथक्-पृथक् हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक वेद पढ़ाया।

मौलवी- शिक्षा देने में कितना समय लगा?

स्वामी- जितना समय उन की बुद्धि की दृढ़ता के लिए आवश्यक था।

मौलवी- पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा जो वेद में लिखे हुए हैं अर्थात् क्या शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाया?

स्वामी- वहीं अक्षर जो वेद में लिखे हुए हैं शब्दार्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाये गये।

मौलवी- शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वादि साधनों

की अपेक्षा है। शिक्षा देनेवाले में यह साधन हैं या नहीं?

स्वामी- उस में ये साधन नहीं हैं, क्योंकि वह निराकार है। शिक्षा देने के लिए परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधनादि से रहित है।

मौलवी- शब्द कैसे बोला गया?

स्वामी- जैसे आत्मा और मन में बोला सुना और समझा जाता है।

मौलवी- भाषा को जाने बिना शब्द किस प्रकार उनके मन में आये?

स्वामी- ईश्वर के डालने से क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

मौलवी- इस सारे वार्तालाप में दो बातें बुद्धि के विरुद्ध हैं प्रथम यह कि ब्रह्म ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी, जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं। दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे, दिल में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे। यदि यह स्वीकार किया जावे तो फिर समस्त बुद्धिविरुद्ध बातें जैसे चमत्कारादि सब मतों के सत्य स्वीकार करने चाहिये।

स्वामी- ये दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं क्योंकि ये दोनों ही सच्ची हैं। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे, वह शब्दों के बिना नहीं हो सकता। उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग अलग होने पर होती है, क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण। परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था। परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उन के अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया। जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिस ने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना, सिखा देता है उसी प्रकार परमेश्वर ने जिस की विद्या व्यापक है और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था, उन को सिखा दिया। ये बातें बुद्धि-विरुद्ध नहीं। जो इस को बुद्धिविरुद्ध कहे, वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे। पुराण जो पुरानी पुस्तकें है अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं, वे वहीं तक सत्य हैं। जहाँ तक वेदविरुद्ध न हों। और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि, वे प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, नितान्त झूठे हैं।

मौलवी- पुराण मत की पुस्तके हैं या विद्या की?

स्वामी- वे प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौलवी- जब वेद विद्या की पुस्तक है और पुराण मत की पुस्तकें हैं और आपके कथनानुसार असत्य हैं तो आर्यो का धर्म क्या है?

स्वामी- **धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो। वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्यों का प्राचीन धर्म है** और पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौलवी- पक्षपात आप किस को कहते हैं?

स्वामी- जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिए न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है, वह पक्षपात कहलाता है।

मौलवी- यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य न हो तो आर्य लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं।

स्वामी- **विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा अधर्म से सम्बन्धित नहीं मानते प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ**

वर्गों से है। इस के ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मतवाले के साथ इन दोनों कार्यों में सम्मिलित होना हानिकारक है इसलिए करना अनुचित है। **जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं, उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है।** और यदि कोई विद्वान् उन से पृथक् हो जावे तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उस को शिक्षा का लाभ उठाने से वञ्चित रखेगी। सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुँचाना और दूसरों को हानि पहुँचाना उचित नहीं।

पाँचवा प्रश्न-

(रविवार 17 सितम्बर, सन् 1882 तदनुसार भादों सुदि पञ्चमी संवत् 1939 विक्रमी)

प्रश्न मौलवी- समस्त धर्म वाले अपनी धार्मिक पुस्तकों को सबसे उत्तम और उन की भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और उस को उस कारण का कार्य भी कहते हैं। जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियाँ वे देते हैं, उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा। कोई प्रमाण प्रकट नहीं किया, **फिर वेद में क्या विशेषता है?**

स्वामी- पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे, वे सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकतीं और कार्य का होना कारण के बिना असम्भव है। चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं अर्थात् पुराणी, जैनी, इञ्जीत तौरेत वाले किरानी, कुरानी इन की पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय भी मेरे पास हैं और मैं इन के बारे में कुछ कह भी सकता हूँ और पुस्तक भी दिखा सकता हूँ। उदाहरणार्थ- पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं यह अशुद्ध है क्योंकि शरीर संयोगज है, इसलिए वह कार्य है उस के लिए कर्त्ता की अपेक्षा है।

जिन्होंने इस कार्य को इस प्रकार सनातन माना है कि कोई इस का रचयिता नहीं, वह भी अशुद्ध है क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता। इञ्जील और कुरान में अभाव से भाव माना है। ये चारों बातें उदाहरणार्थ विद्या के नियमों के विरुद्ध है, इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते। वेदों में कारण से कार्य को माना है और कारण को अनादि कहा है। कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है। इस को समस्त बुद्धिमान् मानते हैं। मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूँ। यदि कोई सज्जन इस को प्रकट रूप में देखना चाहें तो मैं किसी दिन तीन घण्टे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूं। यदि कोई नास्तिक वेद में से प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखायेगा तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए वेद सत्यविद्याओं की पुस्तक है न कि किसी मत विशेष की।

छठा प्रश्न-

प्रश्न मौलवी- क्या प्रकृति अनादि है?

उत्तर स्वामी- उपादान कारण अनादि है।

मौलवी- अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं?

स्वामी- तीन। परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण- ये तीनों स्वभाव से अनादि हैं। इन का संयोग, वियोग, कर्म तथा उन का फल भोग प्रवाह से अनादि है। कारण का उदाहरण- जैसे घड़ा कार्य, उस का उपादान कारण मट्टी, बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार चक्र दण्डादि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण।

मौलवी- वह वस्तु जिस को हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं सकती, हम उस को अनादि क्योंकर मान सकते हैं?

स्वामी- जो वस्तु नहीं है वह कभी नहीं हो सकती और जो है वही होती है। जैसे इस सभा के मनुष्य जो थे तो यहाँ आये। यहाँ हैं तो फिर भी कहीं होंगे। बिना

कारण के कार्य का मानना ऐसा है, जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना। कार्य वस्तु से चारों कारण जिन का ऊपर वर्णन किया है पहले मानने पड़ेंगे। संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं जिस के पूर्वकथित चार कारण न हों।

मौलवी- सम्भव है कि जगत् का कारण जिसे आप अनादि कहते हैं कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो। जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुएँ मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है। इस वार्तालाप के परिणाम से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई कारण चाहिए तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा।

स्वामी- अनादि कारण उसका नाम है जो किसी का कार्य न हो। जो किसी का कार्य हो उस को अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते किन्तु वह परम्परा और पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है। यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थविद्या को यथावत् जानते हैं, स्वीकरणीय है। किसी वस्तु को चाहे जहाँ तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वह सूक्ष्म हो चाहे स्थूल, जो उस की अन्तिम अवस्था होगी, उस को कारण कहते हैं और जो यह बिजुली का दृष्टान्त दिया, वह भी निश्चित कारणों से होता है जो उस के लिए आवश्यक है। अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती।

सातवां प्रश्न-

मौलवी- **यदि वेद ईश्वर का बनाया होता** तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को लाभ पहुँचाना चाहिए था।

स्वामी- सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सब को लाभ पहुँचता है क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदिकारण वेद ही हैं। और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बाते हैं, वे अविद्या के सम्बन्ध से हैं क्योंकि वे सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं। वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती है। और वेदों में किसी का खण्डन-मण्डन नहीं। जैसे सृष्टि विद्या वाले सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं, वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं और नहीं पढ़ने वाले कम।

मौलवी- कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने माना हो और न किसी मत की पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खण्डन-मण्डन पाया जाता है।

स्वामी- वेदों का खण्डन-मण्डन पुस्तकों में है, जैसे कुरान में बेकिताब वाले और एक ऊती ईश्वर के मानने वाले जैसे बाइबिल में पिता पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते हैं। जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं- बीच के काल के हैं। उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे तो जंगलियों को विद्या से क्या काम। पूर्व के विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे और वर्तमान समय में शब्द विद्या (फिलालोजी) के परीक्षक **मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं।** जब बाइबिल कुरान नहीं बने थे, तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी। मनुष्य की उत्पत्ति का आदि काल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है जिस को 1960852997 वर्ष हुए। इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है।

पाण्डे मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणासाहब नहीं आये थे परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था। अन्तिम दिन श्री महाराज पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दरबार साहब ने कहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक है। फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इस का समर्थन किया।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/७/२०१५
भार- ४० ग्राम

जुलाई 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.................................
ग्राम.................................
डा0.................................
जिला.................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-110006 से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीता राम, दिल्ली-110006 से मुद्रित।